International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-9, Issue-4 July-August- 2022
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा निर्धारित सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूंल्याकन

DR. Sudha Sharma

Aissistant Professor

IIMT University , Meerut

सार–

जीवन में सफलता का आधार वास्तव में शिक्षा में निहित है। समय के साथ–साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा को समाजीकरण का सशक्त साधन मानते हुए इसके द्वारा वैयक्तिकता व नागरिकता के गुणों को विकसित करने का प्रयत्न किया गया। आजकल हम शिक्षा को व्यवसायोन्मुख करने का यत्न कर रहे हैं। उत्तम सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण व हस्तांतरण पर भी ध्यान दिया जा रहा है। शिक्षा मानव जीवन का एक सुसंस्कृत एवं महत्वपूर्ण पक्ष है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति उस राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करती है। और किसी भी राष्ट्र काभविष्य और उन्नति का पथ शिक्षा की प्रथम सीढी प्राथमिक शिक्षा है। जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचाता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं हैं। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जो स्थान प्राथमिक शिक्षा का है। उतना और किसी दूसरी राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है।

प्रस्तावना–

शिक्षा मानव समाज की संरचना एवं व्यक्ति का भावी जीवन के दिशा निर्देशन का मूल आधार है। अतः शिक्षा का स्वरूप इतना व्यापक होना आवश्यक है जिससे अपेक्षाओं एवं उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हो सके। पूर्व माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थी निश्चय ही ज्ञान एवं चिन्तन की ओर अग्रसर होकर विषय को गहनता से समझने में रूचि लेने लगता है। उसकी कल्पना–शक्ति का विकास होने लगता है तथा जीवन के प्रत्येक रहस्य को जानने की जिज्ञासा प्रबल होने लगती है। शिक्षा एक अत्याधिक विवादस्पद विषय भी रहा है। व्यक्ति एवं समाज संदर्भ में इसे सदैव प्रशंसा अथवा दोष का भागी माना जाता रहा। 'कैसी है' और 'कैसी होनी चाहिये' ने सदैव शिक्षा को विवाद ग्रस्त रखा है। इसके फलस्वरूप वर्तमान में असन्तुष्टि की स्थिति एक स्थाई स्थिति का रूप धारण करती जा रही है। इस स्थिति के लिए उत्तरदायी मूल्य रूप से शिक्षा के अर्थ में समस्या का न होना है। प्रत्येक विवाद–कर्ता इसके अर्थ को एक विभिन्न विशिष्ट प्रारूप में देखता है, क्योंकि आदिकाल से वर्तमान तक इसके अर्थों में इतना परिवर्तन आया है कि इसकी अवधारणा एक भ्रामक रूप ले चुकी है। इस कारण शिक्षा की अवधारणा का एक स्पष्ट प्रारूप प्रस्तुत करना आवश्यक है। शिक्षा का सर्वाधिक प्रयुक्त अर्थ इस शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्रक्रिया से है। जिसे विद्यालय में प्रयुक्त किया जाता है। गत

कुछ वर्षों से एक अन्य अर्थ भी प्रयोग में आने लगा है जिसके अनुसार शिक्षा को निर्देश एवं प्रशिक्षण की कला अथवा विज्ञान अथवा दोनों के रूप में देखा जाता है। विश्वविद्यालयों एवं शिक्षक प्रशिक्षण विभागों में इसी अर्थ के संदर्भ में शिक्षा को लिया जाता है। उपरोक्त दृष्टिकोण स्पष्ट होते हुए भी कुछ संदर्भों में भ्रामक है। परिणाम रूप में, विद्यालय में व्यतीत समय, व्यवहार का परिभार्जित रूप, आदि दृष्टिकोणों से विश्लेषण करने पर शिक्षा को अधिक स्पष्ट रूप में विकसित करने की आवश्यकता दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार किसी वातावरण में शिक्षा प्राप्त की एवं उस शिक्षा का प्रारूप सर्वाधिक का अविधिक में से कैसा है, भी शिक्षा के अर्थ को भिन्नता देने के लिए उत्तरदायी हो जाता है। उपरोक्त के आधार पर यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा के अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र की उचित व स्पष्ट अवधारणा विकसित की जाये।

शिक्षा की अवधारणा

वस्तुतः मानव मृत्युपर्यन्त सीखता रहता है एवं उसी के आधार पर विकासोन्मुख होता है। विद्यालय तो इस विकास को एक निशिचित दिशा ही प्रदान करता है, वस्तुत: विद्यालयी शिक्षा तो शिक्षा के व्यापक रूप के अन्तर्गत ही दी जाती है। संसार का प्रत्येक प्राणी जिस भी जाति में जन्म लेता है उसके मध्य ही अनेक प्रकार की क्रियायें सीखता है। यह क्रियायें केवल परिस्थियों के साथ समायोजन कर आत्म–रक्षा के कार्यों तक ही सीमित नहीं रहती है। वरन् अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण करने की क्षमता का भी विकास करती है। यह निर्माण सुखवाद पर आधारित होता है। यह निर्माण क्षमता ही शिक्षा है। शिक्षा शब्द का प्रयोग तीन रूपों में किया जाता है। ज्ञान के लिए मानव के शारिरिक और मानसिक व्यवहार में परिवर्तन हेतु प्रक्रिया के लिए और पाठ्यचर्या के एक विषय के लिए। जहां शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञान के लिए किया जाता है। तो समस्त ब्रह्मांड उसका विषय क्षेत्र होता है। इस ब्रह्मांड का प्रत्येक तत्य उसका अंग होता है। इस रूप में शिक्षा के अंगों की कोई सीमा नहीं होती है।

प्रस्तावना–

शिक्षा शब्द का दूसरा प्रयोग मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन करने वाली प्रक्रिया के लिये होता है। इस रूप में भी उसका प्रयोग दो रूपों में होता है। व्यापक रूप में और समुचित रूप में। व्यापक रूप में शिक्षा प्रक्रिया के तीन अंग होते हैं– शिक्षक, शिक्षार्थी, एवं सामाजिक पर्यावरण। यह तीनों ही शैक्षिक तत्व या अंगों के रूप में महत्वपूर्ण है।

व्यापक एवं संकुचित दोनों अर्थों में शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। मानव कुछ शक्तियों को लेकर उत्पन्न होता है। भौतिक और सामाजिक पर्यावरण में इन शक्तियों का विकास होता है। और मनुष्य के व्यवहार तथा विचारों में विशेष प्रकार का परिवर्तन होता है। मनुष्य की सम्पूर्ण सभ्यता एवं संस्कृति का विकास उसके सामाजिक पर्यावरण में ही होता है। बिना सामाजिक पर्यावरण के शिक्षण प्रक्रिया असम्भव है। संकुचित अर्थ में शिक्षा केवल विद्यालय जीवन तक सीमित होती है, पर अपने वास्तविक अर्थ में यह जन्म से मरण तक चलती है। मनुष्य जन्म से ही सीखता रहता है एवं जीवन के प्रत्येक अनुभव के साथ कुछ न कुछ अर्जन करता रहता है। इस प्रकार सतत् निरन्तरता इसका लक्षण है। सामान्यतः शिक्षा की प्रक्रिया दो के मध्य चलती है। एक वह जो प्रभावित होता है और

दूसरा वह जो प्रभावित करता है। इसके आधार पर जॉन एम्स ने शिक्षा को द्वि–ध्रुवीय प्रक्रिया कहा है। उनके अनुसार शिक्षा के दो ध्रुव हैं:– शिक्षार्थी एवं शिक्षक। जॉन डीवी ने भी शिक्षा के दो ही अंग माने हैं, उन्होंने इसको मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक नाम दिया है। कभी–कभी सामाजिक पर्यावरण को शिक्षा का तीसरा आधार मानने के कारण शिक्षा तीन ध्रुवीय, शिक्षार्थी, शिक्षक व पाठ्यक्रम हो जाती है।

मानव का जन्मजात व्यवहार पशुवत होता है। सामाजिक पर्यावरण में रह कर वह अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। परिवर्तन की इस क्रिया को ही शिक्षा कहा जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा द्वारा मनुष्य अपना विकास तो करता ही साथ ही जान के हस्तान्तरण के द्वारा अगली पीढ़ी को भी विकसित होने का आधार प्रदान करता है। इस प्रकार जाति अथवा समाज की सभ्यता एवं संस्कृति विकसित होती है। कोई भी शिक्षा सामाजिक परिवर्तनों को स्वीकार करती हुई आगे बढ़ती है। सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप उसके उद्देश्य, पाठयक्रम व शिक्षण प्रक्रिया प्रभावित होती रहती है। यह प्रभाव शिक्षा को गतिशीलता प्रदान करता है।

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक शिक्षा–प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह पहली सीढी है जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुॅचाता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं हैं। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जो स्थान प्राथमिक शिक्षा का है। उतना और किसी दूसरी राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश के समस्त निवासियों से होता है। यह प्रत्येक कदम पर सभी व्यक्तियों को एकसाथ जोडकर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखी जाती है ।

शिक्षा मानव समाज की संरचना एवं व्यक्ति के भावी जीवन के दिशा निर्देशन का मूल आधार है। अतः शिक्षा का स्वरूप इतना व्यापक होना आवश्यक है जिससे अपेक्षाओं एवं उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हो सके। पूर्व माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थी निश्चय ही ज्ञान एवं चिन्तन की ओर अग्रसर होकर विषय को गहनता से समझने में रूचि लेने लगता है। उसकी कल्पना–शक्ति का विकास होने लगता है तथा जीवन के प्रत्येक रहस्य को जानने की जिज्ञासा प्रबल होने लगती है। भाषा हमारी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम है। इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि कोई भी विषय क्यों न हो, भाषा के बिना उसका प्रकटीकरण सम्भव नहीं है। इसीलिए हमारे शिक्षा–क्रम में भाषा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ एक ओर भाषा अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है, वहीं दूसरी ओर भाषा अपने देश एवं संस्कृति से परिचित कराती है। युगों से संचित ज्ञान–राशि का रसास्वादन हम भाषा के माध्यम से ही कर सकते हैं। भाषा के द्वारा ही अपने ज्ञान–विज्ञान को हम संचित रख सकते हैं। भाषा चरित्र–निर्माण का एक प्रमुख साधन है। इसकी एक झलक पाठ्यक्रम में मिलनी चाहिए। हमें भाषा के अध्यापन द्वारा अच्छे विचारों से अवगत होने में सहायता मिलती है और अच्छे विचार अच्छे चरित्र का निर्माण करते हैं और समाज की धारा को बदल देते हैं। मातृभाषा की पहुँच हमारे अर्न्तमन की गहराईयों तक होती है। इन्ही कारणों से शिक्षाशास्त्रियों का मत है कि बालक को मातृभाषा के

माध्यम के द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिए। मातृभाषा के माध्यम से हम जन–जन में ज्ञान के सूर्य को अवतरित कर सकते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारी मातृभाषा हिन्दी समूचे देश की राष्ट्रभाषा भी है। पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। पाठ्यक्रम निर्माण शैक्षिक प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि यह उद्देश्यों की प्रर्ति के लिए प्रारम्भिक एवं मूलभूत आधार होता है। पाठ्यक्रम निर्माण के उपरान्त शिक्षाविदों के सम्मुख जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न होता है, वह यह है कि निर्धारित पाठ्यक्रम को शिक्षार्थियों तक कैसे पहुंचाया जाये तथा उनके लिये इसे कैसे ग्रहय बनाया जाये। इसका उत्तर शिक्षार्थियों के लिए उपयुक्त अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में केवल कंठस्थ ज्ञान का ही उपयोग किया जाता था, किन्तु मानव ज्ञान के बढ़ते विशाल–भंडार तथा इसकी जटिलता के परिणामस्वरूप केवल मौखिक शिक्षण अब अपूर्ण सिद्व हो गया है। शिक्षण–अधिगम की सफलता के लिए अब परम्परागत अनुदेशनात्मक सामग्री के साथ–साथ अन्य कई प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग किया जा रहा है।

अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली सामग्री पाठ्य–पुस्तकें हैं। पाठ्यक्रम की वास्तविक को पाठ्य पुस्तकों द्वारा ही विस्तार मिलता है, जिससे वह शिक्षक एवं छात्र दोनों के लिए सुगम हो पाता है। पाठ्य–पुस्तकें पाठयक्रम की पूरक होती हैं। पाठ्यक्रम का पारूप बिना पुस्तकों के अधूरा तथा अस्पष्ट होता है। किसी स्तर के पाठ्यक्रम के प्रारूप को समझने के लिए, पाठयक्रम की रूपरेखा के साथ पुस्तकों का भी उल्लेख किया जाता है। पाठयक्रम के स्वरूप के लिए पाठ्य–पुस्तकें भी प्रस्तावित की जाती हैं। उन पुस्तकों के अवलोकन से विभिन्न प्रकरणों का स्वरूप–बोध शिक्षक तथा विद्यार्थियों को होता है। परीक्षक भी प्रश्न–पत्रों के निर्माण के समय इन्हीं पुस्तकों की सहायता लेता है।

पाठ्य पुस्तकों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मनुष्य में संग्रह की मूल प्रवृत्ति जन्मजात होती है। इसी मूल प्रवृत्ति के सन्तोष के लिए मनुष्य कुछ न कुछ वस्तुयें संग्रहीत करते रहते हैं। मनुष्य अपने ज्ञान एवं अनुभवों को भी संचित करता है। इसी से आज हमारे पास मानव–सभ्यता और संस्कृति के विकास से सम्बधित निधियाँ संचित हैं। पुस्तकें भी इन्ही संग्रहीत निधियों में से एक हैं। मनुष्य ने अपने अर्जित अनुभवों और ज्ञान को भावी संतति के लिये संचित रखने के लिये उसे लिपिबद्व किया है। यही लिपिबद्व प्रयास आज हमें पुस्तकों के रूप में मिलता है। पुस्तकों द्वारा ज्ञान को संचित ही नहीं किया जाता है अपितु इन पुस्तकों के माध्यम से नई पीढ़ी को ज्ञान दिया जाता है।

पाठ्य पुस्तकों का एक ऐसा प्रकार हैं, जिनमें मौलिक और स्थायी महत्व की पुस्तकों से कुछ सामग्री चयन करके विविध स्तरों के विद्यार्थियों के लिए हम पुस्तकों के रूप में व्यवस्थित कर लेते हैं। शिक्षक अपने शिक्षण की तैयारी में इनका प्रयोग करता है तथा छात्र परीक्षा की तैयारी के लिए इनका अध्ययन करता है। इन पाठ्य पुस्तकों का विद्यार्थियों के लिये अत्यधिक महत्व होता है। पुस्तकें हमारे जीवन का अविच्छिन्न अंग बन चुकी हैं। स्त्री–पुरूष का जीवन पुस्तकों के अभाव में

प्रायः शून्यवत् है। पुस्तकें हमारा जीवन हैं, प्राण–दायिनी शक्तियों का स्त्रोत हैं, दुख–सुख की संगिनी और मार्ग–दर्शिका हैं।

पाठ्य–पुस्तकों के मूल्यांकन के लिये मानदण्ड

1. पुस्तक का यांत्रिक पहलू : इसके अन्तर्गत पाठ्य–पुस्तक का बाह्य स्वरूप, आकार, पृष्ठ संख्या, जिल्द, कागज की किस्म, छपाई की स्पष्टता, सज–धज तथा हाशिया आदि सम्मिलित हैं।

2. पाठ्य–पुस्तक की व्यवस्था : इस मानदण्ड के अनुसार पाठ्य–पुस्तक के भीतर विषय के विभाजन, उसकी श्रृंखला–बद्धता, तार्किकता, सारांश तथा अभ्यासार्थ प्रश्नों की व्यवस्था पर ध्यान दिया जाता हैं

3. प्रस्तुतीकरण : इसके अन्तर्गत पाठ्य–पुस्तक की भाषा–शैली, उसमें प्रयुक्त शब्दावली, प्रतिपादन पद्धति, विषय की स्पष्टता एवं बोधग्राह्यता आदि निहित है।

4. उदाहरण : इसके अन्तर्गत चित्रों, रेखाचित्रों, मानचित्रों तथा चार्टों की शुद्धता, उपयोगिता, स्पष्टता, रोचकता, वस्तुनिष्ठता यथास्थानता तथा आकार आदि पर विचार किया जाता है। पाठ्य–पुस्तक के लिये ये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

5. अभ्यासार्थ प्रश्न : प्रत्येक पाठ के अन्त में दिये गये अभ्यासार्थ प्रश्नों का विषय–वस्तु से सम्बन्ध, उनकी व्यापकता, प्रेरणात्मक शक्ति, स्पष्टता, शुद्धता, विश्वसनीयता तथा कठिनाई स्तर निर्धारित करना आवश्यक है। अभ्यासार्थ प्रश्नों का मूलयांकन इन्हीं दृष्टियों से किया जाता है।

6. सहायक ग्रन्थों की सूची : पाठ्य–पुस्तक में प्रस्तुत सहायक ग्रन्थों की सूची तथा निर्देशन की छात्रों तथा शिक्षकों की दृष्टि से उपयोगिता, उसकी व्यवहारिकता, निश्चितता, उपलब्धता, विश्वसनीयता एवं वैधता पर विचार करना परमावश्यक है।

7. अनुक्रमणिका एवं विषय सूची : इसके अन्तर्गत पाठ्य–पुस्तक के अन्दर दी हुयी विषय–सूची की पूर्णता, स्पष्टता, व्यवस्था, व्यवहारिक उपयोगिता तथा ससंगठन आदि पर ध्यान दिया जाता है।

8. लेखक : इसके अन्तर्गत लेखक की योग्यता, लेखन तथा शिक्षण अनुभव, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा वर्तमान आदि पर विचार करना होता है।

इन मानदण्डों के आधार पर पुस्तकों की पाठ्य–वस्तु का विश्लेषण और पुस्तकों की उपयुक्तता का मूल्यांकन किया जायेगा। पूर्व माध्यमिक स्तर पर कार्यरत सामाजिक अध्ययन अध्यापकों कके मत प्राप्त करने के लिये शोधकर्ती द्वारा इन्हीं मानदण्डों पर आधारित प्रश्नावली तैयारी की जायेगी जिसमें शामिल प्रश्नों के प्राप्त उत्तरों का आंकलन करके पुस्तकों की उपयुक्तता सम्बन्धी मूल्यांकन किया जायेगा।

निष्कर्ष–

सामाजिक विज्ञान की पाठ्य–पुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थियों के कौशल और स्वाध्यायशील प्रवृत्ति को इस उद्देश्य से प्रशिक्षित करने की चेष्टा की जाती है कि पुस्तकों के पठन और मनन के द्वारा वे अपने भावी जीवन में ज्ञानोपलब्धि की ओर अग्रसर होते रहें। ज्ञान के विकास और पठन–पाठन तथा

अध्ययन–अध्यापन में एकरूपता एवं समान स्तर के लिए भी पाठ्य पुस्तकों का सहारा लेना पड़ता है। ज्ञान को मितव्ययी एवं व्यवस्थित ढंग प्रदान करने के लिए भी पाठ्य–पुस्तकें आवश्यक हैं। शिक्षक के लिए पाठ्य–पुस्तकें एक मार्ग का कार्य करती हैं क्योंकि इनके द्वारा कक्षा की पूरे वर्ष प्रगति के लिए वे योजना तैयार करते हैं। पाठ्य–पुस्तकों से उन अध्यापकों को पाठ्य–वस्तु व्यवस्थित करने में अधिक सहायता मिलती है जिनको शिक्षण का अधिक अनुभव नहीं है, उन्हें विषय–वस्तु एक ही जगह पाठ्य–पुस्तक में मिल जाती है। ऐसी अवस्था में हम कह सकते हैं कि सामाजिक विज्ञान शिक्षा की पूरी क्रिया ही आज पाठ्य–पुस्तकों पर आधारित है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण में पुस्तकें ज्ञान के विकास में तो सहायक होती ही हैं, इसके साथ–साथ इनके द्वारा बालकों का मनोरंजन कार्य भी होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

- **एण्डरसन, एन0 (1980)** स्केल्स एण्ड स्टैटिस्टिक्स : पैरामैट्रिक एण्ड नॉन पैरामैट्रिसाइकोलॉजीकल बुलेटिन, 58, 1961, 305–316 ।
- **एण्डरसन, सी0 ए0, (1995)** शैक्षिक योजना से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्ध, पेरिस आई.आई.ई.पी. :यूनेस्को ।
- **एल्शियन्स, ए0ए0, एण्ड एलन,डब्ल्यू0आर0, (2002)** यूनिर्वसिटी इकॉनोमिक्स वैड्सवर्थ।
- **एस्टडी ऑन टीचर एबसेन्टिज्म इन एम0पी0 एण्ड यू0पी0 (2004)** डवलपमेन्ट एण्ड रिर्सच सर्विसेज, नई दिल्ली।
- **एन0सी0 ई0आर0 टी0, (2004)** शिशु शिक्षा केन्द्र एवं उत्तर प्रदेश बेसिक एजूकेशन प्रोजेक्ट इनीशियेटिव इवैल्यूएशन रिपोर्ट, डिपार्टमेंन्ट ऑफ प्रीस्कूल एण्ड एलीमेन्ट्री एजूकेशन।
- **एलन, के0 जी0 डी0 (2007)** मैथमैटिकल इकॉनोमिक्स, लन्दन : मैकमिलन।
- **बासु, ए0 एन0, (2015)** भारत में विश्वविद्यालयीय शिक्षा का विकास, कलकत्ता ।
- **भागवल दयाल, (2011)** भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास, बम्बई ।
- **भटनागर, सक्सेना (2014)** भारत में शिक्षा का विकास, मेरठ।
- **अहमद, मन्जूर, ए0के0जलालुद्दीन एण्ड के0 रामचन्द्रन, (2012)** बेसिक एजूकेशन एण्ड नेशन डवलपमेंट, न्यूयार्क, यूनिसेफ।
- **आर्मिटेज, पी0. एण्ड स्मिथ,सी0., (2004)** शैक्षिक योजना में गणितीय मॉडल्स, पेरिस ओ.ई.जी.डी. यूनेस्को।